अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शिष्येभ्यो दीक्षादानविधिः

नारद उवाच

वक्ष्ये दीक्षां सर्वदा च मण्डलेऽब्जे हरिं यजेत्। दशम्यामुपसंहृत्य यागद्रव्यं समस्तकम्।।१।।
विन्यस्य नारसिंहेन सम्मन्त्र्य शतवारकम्। सर्षपांस्तु फडन्तेन रक्षोघ्नान्सर्वतः क्षिपेत्।।२।।
शक्तिं सर्वात्मिकां तत्र न्यसेत्प्रासादरूपिणीम्। सर्वौषधीः समाहृत्य विकिरानभिमन्त्रयेत्।।३।।
शतवारं शुभे पात्रे वासुदेवेन साधकः। संसाध्य पञ्चगव्यं तु पञ्चभिर्मूलमूर्तिभिः।।४।।
नारायणान्तैः सम्प्रोक्ष्य कुशाग्रैस्तेन तां भुवम्। विकारान्वासुदेवेन क्षिपेदुत्तानपाणिना।।५।।
त्रिधा पूर्वामुखस्तिष्ठन् ध्यायन् विष्णुं तदा हृदि। वर्धन्या सहिते कुम्भे साङ्गं विष्णुं प्रपूजयेत्।।६।।
शतवारं मन्त्रयित्वा त्वस्त्रेणैव च वर्धनीम्। अच्छिन्नधारया सिञ्चन्नैशान्यन्तं नयेच्च ताम्।।७।।
कलशं पृष्ठतो नीत्वा स्थापयेद्विकिरोपरि। संहृत्य विकिरान्दर्भैः कुम्भेशं कर्करीं यजेत्।।८।।
सवस्त्रे पञ्चरत्नाढ्ये स्थण्डिले पूजयेद्धरिम्। अग्नावपि समभ्यर्च्यं मन्त्रैः सन्तर्प्य पूर्ववत्।।९।।
प्रक्षाल्य पुण्डरीकेण विलिप्यान्तः सुगन्धिना। उखामाज्येन सम्पूर्य गोक्षीरेण तु साधकः।।१०।।

अध्याय-२७

शिष्य दीक्षा विधान

ब्रह्मर्षि नारद जी ने कहा कि–हे महर्षिगण! अधुना मैं सब कुछ देने वाली दीक्षा का वर्णन करने जा रहा हूँ। कमलाकार मण्डल में भगवान् श्रीहरि विष्णुजी का पूजन करना चाहिये। दशमी तिथि को समस्त यज्ञ सम्बन्धी द्रव्य का संग्रह एवं संस्कार (शुद्धि) करके रख ले। नरसिंह-बीज-मन्त्र (क्ष्रौं) से सौ बार उसको अभिमन्त्रित करके, उस मन्त्र के अन्त में 'फट्' लगाकर बोले तथा राक्षसों का विनाश करने के उद्देश्य से सभी तरफ सरसों छींटे। फिर वहाँ सर्वस्वरूपा प्रासादरूपा प्रासादरूपिणी शक्ति का न्यास करना चाहिये। सर्वौषधियों का संग्रह करके बिखेरने के उपयोग में आने वाली सरसों आदि वस्तुओं को शुभ पात्र में रखकर साधक को वासुदेव-मन्त्र से उनका सौ बार अभिमन्त्रण करना चाहिये। तत्पश्चात् वासुदेव से लेकर नारायण पर्यन्त उपरोक्त पाँच मूर्तियों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण) के मूल मन्त्रों द्वारा पञ्चगव्य तैयार करना चाहिये और कुशाग्र से पञ्चगव्य छिड़क कर उस भूमि का प्रोक्षण करना चाहिये। तत्पश्चात् वासुदेव मन्त्र से उत्तान हाथ के समस्त विकिर वस्तुओं को सभी तरफ बिखेरे।।१-५।। उस समय पूर्वाभिमुख खड़ा हो, मन ही मन भगवान् श्रीहरि विष्णुजी का चिन्तन करते हुए तीन बार उन विकिर वस्तुओं को सभी तरफ छींटे। तत्पश्चात् वर्धनीसहित कलश पर स्थापित भगवान् विष्णु का अङ्गसहित पूजन करना चाहिये। अस्त्र मन्त्र से वर्धनी को सौ बार अभिमन्त्रित करके अविच्छिन्न जलधारा से सींचते हुए उसको ईशानकोण की तरफ ले जाय। कलश को पीछे ले जाकर विकिर पर स्थापित करना चाहिये। विकिर द्रव्यों को कुश द्वारा एकत्र करके कुम्भेश और कर्करीका का यजन करना चाहिये।।६-८।। पञ्चरत्नयुक्त सवस्त्र वेदी पर श्रीहरि की पूजा करनी चाहिये। अग्नि में भी उनकी अर्चना करके पूर्ववत् मन्त्रों द्वारा उनका संतर्पण करना चाहिये। तत्पश्चात् पुण्डरीक मन्त्र

आबोड्य वासुदेवेन ततः सङ्कर्षणेन च। तण्डुलानाज्यसंसृष्टान् क्षिपेत् क्षीरे सुसंस्कृते।।११।।
प्रद्युम्नेन समालोड्य दर्व्या सङ्घट्टयेच्छनैः। पक्वमुत्तारयेत्पश्चादनिरुद्धेन देशिकः।।१२।।
प्रक्षाल्यालिप्य तत्कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं तु भस्मना। हारायणेन पार्श्वेषु चरुमेवं सुसंस्कृतम्।।१३।।
भागमेकं तु देवाय कलशाय द्वितीयकम्। तृतीयेन तु भागेन प्रदद्यादाहुतित्रयम्।।१४।।
शिष्यैः सह चतुर्थं तु गुरुरद्याद्विशुद्धये। नारायणेन सम्मन्त्र्य सप्तधा क्षीरवृक्षजम्।।१५।।
दन्तकाष्ठं भक्षयित्वा त्यक्त्वा ज्ञात्वा स्वपातकम्। ऐन्द्राग्न्युत्तरकैशानीमुखः स्नातो ह्यनुत्तमम्।।१६।।
शुभं सिद्धमिति ज्ञात्वाचम्य प्राणान्नियम्य च। पूजागारं विशेन्मन्त्री प्रार्थ्य विष्णुं सदक्षिणम्।।१७।।
संसारार्णवमग्नानां पशूनां पाशमुक्तये। त्वमेव शरणं देव! सदा त्वं भक्तवत्सलः।।१८।।
देवदेवानुजानीहि प्राकृतैः पाशबन्धनैः। पाशितान् मोचयिष्यामि त्वत्प्रसादात्पशूनिमान्।।१९।।
इति विज्ञाप्य देवेशं सम्प्रविश्य पशूंस्ततः। धारणाभिस्तु संशोध्य पूर्ववज्ज्वलनादिना।।२०।।
संस्कृत्य, मूर्त्या संयोज्य नेत्रे बद्ध्वा प्रदर्शयेत्। पुष्पपूर्णाञ्जलींस्तत्र क्षिपेत्तन्नाम योजयेत्।।२१।।
अमन्त्रमर्चनं तत्र पूर्ववत्कारयेत् क्रमात्। यस्यां मूर्तौ पतेत्पुष्पं तस्य तन्नाम निर्विशेत्।।२२।।

से उखा (पात्र विशेष) का प्रक्षालन करके उसके अन्दर सुगन्धयुक्त घी लगा देना चाहिये। इसके बाद साधक को उसमें गोदुग्ध भरकर वासुदेव मन्त्र से उसका अवेक्षण करना चाहिये और संकर्षण मन्त्र से सुसंस्कृत किये गयेदूध में घृताक्त चावल त्याग देना चाहिये। इसके बाद प्रद्युम्न मन्त्र से करछुल द्वारा उस दूध और चावल का आलोडन करके धीरे-धीरे उस उलाटे पलाटे। जिस समय खीर या चरु पक जाय, उस समय आचार्य को अनिरुद्ध मन्त्र पढ़कर उसको आग से नीचे उतार देना चाहिये। तत्पश्चात् उस पर जल छिड़के और घृतालेपन करके हाथ में भस्म लेकर उसके द्वारा नारायण मन्त्र से ललाट एवं पार्श्व भागों में ऊर्ध्व पुण्ड्र करना चाहिये। इस तरह सुन्दर संस्कार युक्त चरु के चार भाग करके एक भाग इष्टदेव को अर्पित करना चाहिये, दूसरा भाग कलश को चढ़ाना चाहिये। तीसरे भाग से अग्नि में तीन बार आहुति देनी चाहिये और चौथे भाग को गुरु शिष्यों के साथ बैठकर खाय; इससे आत्मशुद्धि हो जाती है। प्रातःकाल ऐसे वृक्ष से दाँतून ले जो दूध वाला हो। उस दाँतून को नारायण मन्त्र से सात बार अभिमन्त्रि कर लेना चाहिये। उसका दन्तशुद्धि के लिये उपयोग करके फिर उसको छोड़ देना चाहिये। अपने पातक का स्मरण करके पूर्व, अग्निकोण, उरुर अथवा ईशानकोण की तरफ मुँह करके अच्छी तरह स्नान करना चाहिये। फिर 'शुभ' एवं 'सिद्ध' की भावना करके, अर्थात् 'मैं निष्पाप एवं शुद्ध होकर शुभ सिद्धि की तरफ अग्रसर हुआ हूँ'–ऐसा अनुभव करके आचमन प्राणायाम के पश्चात् मन्त्रोपदेष्टा गुरु भगवान् विष्णु से प्रार्थना करके उनकी परिक्रमा के पश्चात् पूजागृह में प्रवेश करना चाहिये।।९-१७।। प्रार्थना इस तरह करना चाहिए–'हे देव! संसार-सागर में मग्न पशुओं को पाश से छुटकारा दिलाने के लिये आप ही शरणदाता हैं। आप सदा अपने भक्तों पर वात्सल्यभाव रखते हैं। हे देवेदेव! आज्ञा दीजिये, प्राकृत पाश बन्धनों से बँधे हुए इन पशुओं को आज आपकी कृपा से मैं मुक्त करने जा रहा हूँ।' देवेश्वर श्रीहरि से इस तरह प्रर्थना करके पूजागृह में प्रविष्ट होना चाहिये। गुरु पूर्ववत् अग्नि आदि की धारणाओं द्वारा शिष्यभूत समस्त पशुओं का शोधन करके संस्कार करने के पश्चात्, उनका वासुदेवादि मूर्तियों से संयोग करना चाहिये। शिष्यों के नेत्र बाँधकर उनको मूर्तियों की तरफ देखने का आदेश देना चाहिये। शिष्य उन मूर्तियों की तरफ पुष्पाञ्जलि फेंकें, तदनुसार गुरु उनका नाम निर्देश करें। पूर्ववत् शिष्यों से क्रमशः पूर्तियों का मन्त्रहीन पूजन कराये। जिस शिष्य के हाथ का फूल जिस मूर्ति पर

शिखान्तसम्मितं सूत्रं पादाङ्गुष्ठादि षड्गुणम्। कन्यया कर्तितं रक्तं पुनस्तत् त्रिगुणीकृतम्।।२३।।
यस्यां संलीयते विश्वं यतो विश्वं प्रसूयते। प्रकृतिं प्रक्रियाभेदैः संस्थितां तत्र चिन्तयेत्।।२४।।
तेन प्रकृतिकान् पाशान् ग्रथित्वा तत्त्वसङ्ख्यया। कृत्वा शरावे तत्सूत्रं कुण्डपार्श्वे निधाय तु।।२५।।
ततस्तत्त्वानि सर्वाणि ध्यात्वा शिष्यतनौ न्यसेत्। सृष्टिक्रमात् प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि देशिकः।।२६।।
त्रेधा वा पञ्चधा वा स्याद् दशद्वादशधापि च। दातव्यः सर्वभेदेन ग्रथितस्तत्त्वचिन्तकैः।।२७।।
अङ्गैः पञ्चभिरस्त्रान्तं निखिलं प्रकृतिक्रमात्। तन्मात्रात्मनि संहृत्य मायासूत्रे पशोस्तनौ।।२८।।
प्रकृतिर्लिङ्गशक्तिश्च कर्ता बुद्धिस्तथा मनः। पञ्चतन्मात्रबुद्ध्याख्यं कर्माख्यं भूतपञ्चकम्।।२९।।
ध्यायेच्च द्वादशात्मानं सूत्रे देहे तथेच्छया। हुत्वा सम्पातविधिना सृष्टेः सृष्टिक्रमेण तु।।३०।।
एकैकं शतहोमेन दत्त्वा पूर्णाहुतिं ततः। शरावे सम्पुटीकृत्य कुम्भेशाय निवेदयेत्।।३१।।
अधिवास्य यथान्यायं भक्तं शिष्यं तु दीक्षयेत्। करणीं कर्तरीं चापि रजांसि खटिकामपि।।३२।।
अन्यदप्युपयोगि स्यात्सर्वं वामगोचरे। संस्थाप्य मूलमन्त्रेण परामृश्याधिवासयेत्।।३३।।
नमो भूतेभ्यश्च बलिः कुशे देयः स्मरन्हरिम्। मण्डपं भूषयित्वाथ वितानघटलड्डुकैः।।३४।।
मण्डलेऽथ यजेद्विष्णुं ततः सन्तर्प्य पावकम्। आहूय दीक्षयेच्छिष्यान्बद्धपद्मासनस्थितान्।।३५।।

गिरे, गुरु उस शिष्य का वही नाम रखे। कुमारी कन्या के हाथ से काता हुआ लाल रंग का सूत लेकर उसको छः गुना करके बट देना चाहिये। उस छः गुने सूत की लम्बाई पैर के अंगूठे से लकर शिखा तक होनी चाहिये। फिर उसको भी मोड़ कर तिगुना कर लेना चाहिये। कथित त्रिगुणित सूत में प्रक्रिया भेद से स्थित उस प्रकृति देवी का चिन्तन करना चाहिये, जिसमें सम्पूर्ण विश्व का लय होता है और जिससे ही समस्त जगत् का प्रादुर्भाव हुआ करता है। उस सूत्र में प्राकृतिक पाशों को तत्त्व की संख्या के अनुसार ग्रथित करना चाहिये, अर्थात् २४ गाँठें लगाकर उनको प्राकृतिक पाशों के प्रतीक समझे। फिर उस ग्रन्थियुक्त सूत को प्याले रखकर कुण्ड के पास स्थापित कर दें तत्पश्चात् सभी तत्त्वों का चिन्तन करके गुरु को उनका शिष्य के शरीर में न्यास करना चाहिये। तत्त्वों का वह न्यास सृजनक्रम के अनुसार प्रकृति से लेकर पृथिवी पर्यन्त होना चाहिये।।१८-२६।। तीन, पाँच, दस अथवा बारह जितने भी सूत्रभेद सम्भव हों, उन सभी सूत्र भेदों के द्वारा बटे हुए उस सूत्र को ग्रथित करके देना चाहिये। तत्त्वचिन्तक पुरुषों के लिये यही उचित है। हृदय से लेकर अस्त्रपर्यन्त पाँच अंग सम्बन्धी मन्त्र पढ़कर सम्पूर्ण भूतों को प्रकृति क्रम से अर्थात् कार्य तत्त्व का कारण तत्त्व में लय के क्रम से तन्मात्रा स्वरूप में लीन करके उस मायामयसूत्र में और पशु (जीव) के शरीर में भी प्रकृति, लिङ्गशक्ति, कर्ता, बुद्धि तथा मन का उपसंहार करना चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चतन्मात्र, बुद्धि, कर्म और पञ्चमहाभूत–इन द्वादश रूपों में अभिव्यक्त द्वादशात्माका सूत्र और शिष्य के शरीर में चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् इच्छानुसार सृजन की सम्पात विधि से हवन करके, सृजन क्रम से एक-एक के लिये सौ-सौ आहुतियाँ देकर पूर्णाहुति करना चाहिये। प्याले में रखे हुए ग्रथित सूत्र को ऊपर से ढककर उसको कुम्भेश को अर्पित करना चाहिये। फिर यथोचित विधि से अधिवासन करके भक्त शिष्य को दीक्षा देना चाहिये। करनी, कैंची, धूल या बालू, खड़िया मिट्टी और अन्य उपयोगी वस्तुओं का भी संग्रह करके उन सभी को उसके वामभाग में स्थापित कर देना चाहिये। फिर मूल मन्त्र से उनका स्पर्श करके अधिवासित करना चाहिये। तत्पश्चात् श्रीहरि के स्मरणपूर्वक कुशों पर भूतों के लिये बलि दे और कहे–'नमो भूतेभ्यः।' इसके बाद चँदोवों, कलशों और लड्डुओं से मण्डप को सुसज्जित करके मण्डल के अन्दर

सम्प्रोक्ष्य विष्णुहस्तेन मूर्धानं स्पृश्य वै क्रमात्। प्रकृत्यादिविकृत्यन्तां साधिभूताधिदेवताम्।।३६।।
सृष्टिमाध्यात्मिकीं कृत्वा हृदि तां संहरेत्क्रमात्। तन्मात्रभूतां सकलां जीवेन समतां गताम्।।३७।।
ततः सम्प्रार्थ्य कुम्भेशं सूत्रं संस्कृत्य देशिकः।अग्नेः समीपमागत्य पार्श्वे तं सन्निवेश्य तु।।३८।।
मूलमन्त्रेण सृष्टीशमाहुतीनां शतेन तम्। उदासीनमथासाद्य पूर्णाहुत्या च देशिकः।।३९।।
शुक्लं रजः समादाय मूलेन शतमन्त्रितम्। सन्ताड्य हृदयं तेन हुम्फट्कारान्तसंयुतैः।।४०।।
वियोगपदसंयुक्तैर्बीजैः पादादिभिः क्रमात्। पृथिव्यादीनि तत्त्वानि विश्लिष्य जुहुयात्ततः।।४१।।
वह्नावखिलतत्त्वानामालये व्याहृते हरौ। नीयमानं क्रमात्सर्वं तत्त्वाधारं स्मरेद् बुधः।।४२।।
ताडनेन वियोज्यैवमादायापाद्य साम्यताम्। प्रकृत्याहृत्य जुहुयाद्यथोक्ते जातवेदसि।।४३।।
गर्भाधानं जातकर्म भोगं चैव लयं तथा। कृत्वाष्टौ तत्र तत्रैव ततः शुद्धं तु होमयेत्।।४४।।
शुद्धं तत्त्वं समुद्धृत्य पूर्णाहुत्या तु देशिकः। सन्धयेद्धि परे तत्त्वे यावदव्याकृतं क्रमात्।।४५।।
तत्परं ज्ञानयोगेन विलाप्य परमात्मनि। विमुक्तबन्धनं जीवं परस्मिन्नव्यये पदे।।४६।।
निर्वृत्तं परमानन्दे शुद्धे बुद्धे स्मरेद् बुधः। दद्यात् पूर्णाहुतिं पश्चादेवं दीक्षा समाप्यते।।४७।।
प्रयोगमन्त्रान् वक्ष्यामि यैर्दीक्षां होमसंल्लयः।

भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिये। फिर अग्नि को घी से तृप्त करना चाहिये, शिष्यों को पास बुलाकर बद्धपद्मासन से बिठावे और दीक्षा देना चाहिये। बारी-बारी से उन सभी का प्रोक्षण करके विष्णुहस्त से उनके मस्तक का स्पर्श करना चाहिये। प्रकृति से विकृति पर्यन्त, अधिभूत और अधिदैवतसहित सम्पूर्ण सृजन को आध्यात्मिक करके अर्थात् सभी को अपने आत्मा में स्थित मानकर, हृदय में ही क्रमशः उसका विनाश करना चाहिये।।२७-३६।। इससे तन्मात्रस्वरूप हुई सारी दृष्टि जीव के समान हो जाती है। इसके पश्चात् कुम्भेश्वर से प्रार्थना करके गुरु उपरोक्त सूत्र का संस्कार करने के अनन्तर, अग्नि के सन्निकट आ उसको अपने पास ही रख ले। फिर मूल मन्त्र से सृष्टीश के लिये सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। इसके पश्चात् उदासीन भाव से स्थित सृष्टीश को पूर्णाहुति अर्पित करके गुरु को श्वेत रज (बालू) हाथ में लेकर उसको मूल मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करना चाहिये। फिर उससे शिष्य के हृदय पर ताडन करना चाहिये। उस समय वियोगवाची क्रियापद से युक्त बीजमन्त्रों एवं क्रमशः पादादि इन्द्रियों से घटित वाक्य की योजना करके अन्त में 'हुं फट्' का उच्चारण करना चाहिये। इस तरह पृथिवी आदि तत्त्वों का वियोग कराकर आचार्य को भावना द्वारा उनको अग्नि में हवन देना चाहिये। इस तरह कार्य तत्त्वों का कारण तत्त्वों में हवन अथवा लय करते हुए क्रमशः अखिल तत्त्वों के आश्रयभूत श्रीहरि में सभी का लय कर देना चाहिये। विद्वान् पुरुष इसी क्रम से सभी तत्त्वों को श्रीहरि तक पहुँचा कर, उन सम्पूर्ण तत्त्वों के अधिष्ठान का स्मरण करना चाहिये। कथित विधि से ताडन द्वारा भूतों और इन्द्रियों से वियोग कराकर शुद्ध हुए शिष्य को अपनावे और प्रकृति से उसकी समता का निष्पादन करके उपरोक्त अग्नि में उसके उस प्राकृत भाव का भी हवन कर देना चाहिये। फिर गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लय का अनुष्ठान करके उस-उस कर्म के निमित्त वहाँ आठ-आठ बार शुद्ध्यर्थ हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् आचार्य को पूर्णाहुति द्वारा शुद्ध तत्त्व का उद्धार करके अव्याकृत प्रकृति पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् का क्रमानुसार हुए जीव को अविनाशी परमात्मपद में प्रतिष्ठित करना चाहिये। तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष को यह अनुभव करना चाहिये कि 'शिष्य शुद्ध, बुद्ध, परमानन्द संदोह में निमग्न एवं कृतकृत्य हो चुका है।' ऐसा चिन्तन करने के पश्चात् गुरु पूर्णाहुति देनी चाहिये।

ॐ यं भूतानि विशुद्धं हुं फट् अनेन ताडनं कुर्याद् वियोजनमिह द्वयम्।।४८।।
ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम् आदानं कृत्वा चानेन प्रकृत्या योजनं शृणु।
ॐ यं भूतानि पुंश्चाहो होममन्त्रं प्रवक्ष्यामि ततः पूर्णाहुतेर्मनुम्।।४९।।
ॐ भूतानि संहर स्वाहा
ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्। पूर्णाहुत्यन्तरं तु तत्त्वे शिष्यं तु सन्धयेत्।।५०।।
एवं तत्त्वानि सर्वाणि क्रमात् संशोधयेद् बुधः। नमोन्तेन स्वबीजेन ताडनादिपुरःसरम्।।५१।।
ॐ रां कर्मेन्द्रियाणि, ॐ दें बुद्धीन्द्रियाणि (च)। यं बीजेन समानं तु ताडनादिप्रयोगकम्।।५२।।
ॐ सुगन्धतन्मात्रे बिम्बं युङ्क्ष्व हुं फट्। ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या।।५३।।
अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा। ततः पूर्णाहुतिश्चैवमुत्तरेषु प्रयुज्यते।
ॐ रां रसतन्मात्रे। ॐ तें रूपतन्मात्रे। ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे। ॐ यं शब्दतन्मात्रे।
ॐ भं नमः। ॐ मौ अहङ्कारः ॐ नं बुद्धौ। ॐ ॐ ॐ प्रकृतौ।
एकमूर्तावयं प्रोक्तो दीक्षायोगः समासतः। एवमेव प्रयोगस्तु नवव्यूहादिके स्मृतः।।५४-५८।।
दग्ध्या परिस्मिन् सन्दध्यान्निर्वाणे प्रकृतिं नरः। शोधयित्वाथ भूतानि कर्माक्षाक्षि विशोधयेत्।।५९।।
बुद्ध्यक्षाण्यथ तन्मात्रं मनो ज्ञानमहङ्कृतिम्। लिङ्गात्मानं विशोध्यान्ते प्रकृतिं शोधयेत्पुनः।।६०।।

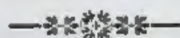
इस तरह दीक्षा कर्म की समाप्ति हो जाती है।।३७-४७।। अधुना मैं उन प्रयोग सम्बन्धी मन्त्रों का वर्णन करने जा रहा हूँ, जिनसे दीक्षा, हवन और लय सम्पादित होते हैं। 'ॐ यं भूतानि वियुङ्क्ष्व हुं फट्।' अर्थात् भूतों को मुझसे अलग करो। इस मन्त्र से ताडन करने का विधान है। इसको द्वारा भूतों से वियोजन (बिलगाव) होता है। यहाँ वियोजन के दो मन्त्र हैं। एक तो वही है, जिसका ऊपर वर्णन हुआ है और दूसरा इस तरह है–'ॐ यं भूतान्यापातयेऽहम्।' (मैं भूतों को अपने से दूर गिराता हूँ)। इस मन्त्र से 'आपातन' अर्थात् वियोजन करके पुनः दिव्य प्रकृति से इस प्रकार संयोजन किया जाता है। उसके लिये मन्त्र है–'ॐ. यं भूतानि युङ्क्ष्व।' अधुना हवन मन्त्र का वर्णन करने जा रहा हूँ। उसके बाद पूर्णाहुति का मन्त्र बताऊँगा। 'ॐ भूतानि संहर स्वाहा।' यह हवन मन्त्र है और 'ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्।' यह पूर्णाहुति मन्त्र है। पूर्णाहुति के पश्चात् तत्त्व में शिष्य को संयुक्त करना चाहिये। विद्वान् पुरुष को इसी तरह समस्त तत्त्वों का क्रमशः शोधन करना चाहिये। तत्त्वों के अपने-अपने बीज के अन्त में 'नमः' पद जोड़कर ताडनादिपूर्वक तत्त्व शुद्धि का निष्पादन करना चाहिये।।४८-५३।। 'ॐ रां (नमः) कर्मेन्द्रियाणि।', ॐ दें (नमः) बुद्धीन्द्रियाणि।'–इन पदों के अन्त में 'वियुङ्क्ष्व हुं फट्।' की संयोजन करना चाहिये। उपरोक्त 'यं' बीज के समान ही इन उपरोक्त बीजों से भी ताडन आदि का प्रयोग होता है। 'ॐ सं पाहि हां ॐ स्वं स्वं युङ्क्ष्व प्रकृत्या अं जं हुं गन्धतन्मात्रे संहर स्वाहा।'–ये क्रमशः संयोजन और हवन के मन्त्र हैं। तत्पश्चात् पूर्णाहुति का विधान है। इसी तरह उत्तरवर्ती कर्मों में भी प्रयोग किया जाता है। 'ॐ रां रसतन्मात्रे। ॐ तें रूपतन्मात्रे। ॐ वं स्पर्शतन्मात्रे। ॐ यं शब्द तन्मात्रे। ॐ मं नमः। ॐ सों अहंकारे। ॐ नं बुद्धौ। ॐ ॐ प्रकृतौ।' यह दीक्षायोग एकव्यूहात्मक मूर्ति के लिये संक्षेप से बतलाया गया है। नवव्यूहादिक मूर्तियों के विषय में भी ऐसा ही प्रयोग है। मनुष्य प्रकृति को दग्ध करके उसको निर्वाणस्वरूप परमात्मा में ध्यान मग्न होकर फिर भूतों की शुद्धि करके कर्मेन्द्रियों का शोधन करना चाहिये।।५४-५९।। तत्पश्चात् ज्ञानेन्द्रियों का, तन्मात्राओं का, मन, बुद्धि एवं अहंकार का तथा लिङ्गात्मा का शोधन

पुरूषं प्राकृतं शुद्धमैश्वरे धाम्नि संस्थितम्। स्वगोचरीकृताशेषभोगं मुक्तौ कृतास्पदम्।।६१।।
ध्यायेत्पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं त्वधिकारदा। अङ्गैराराध्य मन्त्रस्य नीत्वा तत्त्वगणं समम्।।६२।।
क्रमादेवं विशोध्यान्ते सर्वसिद्धिसमन्वितम्। ध्यायन् पूर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं साधके स्मृता।।६३।।
द्रव्यस्य वा न सम्पत्तिरशक्तिर्वात्मनो यदि। इष्ट्वा देवं यथापूर्वं सर्वोपकरणान्वितः।।६४।।
सद्योऽधिवास्य द्वादश्यां दीक्षयेद्देशिकोत्तमः। भक्तो विनीतः शारीरैर्गुणैः सर्वैः समन्वितः।।६५।।
शिष्यो नातिधनी यस्तु स्थण्डिलेऽभ्यर्च्य दीक्षयेत्। अध्वानं निखिलं दैवं भौतं वाध्यात्मिकीकृतम्।।६६।।
सृष्टिक्रमेण शिष्यस्य देहे ध्यात्वा तु देशिकः। अष्टाष्टाहुतिभिः पूर्वं क्रमात्सन्तर्प्य सृष्टिमान्।।६७।।
स्वमन्त्रैर्वासुदेवादीञ् ज्वलनादीन् विसर्जयेत्। होमेन शोधयेत् पश्चात् संहारक्रमयोगतः।।६८।।
यानि सूत्राणि बद्धानि मुक्त्वा कर्माणि देशिकः। शिष्यदेहात्समाहृत्य क्रमात्तत्त्वानि शोधयेत्।।६९।।
अग्नौ प्राकृतिके विष्णौ लयं नीत्वाधिदैविके। शुद्धं तत्त्वमशुद्धेन पूर्णाहुत्या तु सन्धयेत्।।७०।।
शिष्ये प्रकृतिमापन्ने दग्ध्वा प्राकृतिकान्गुणान्। मोचयेदधिकारे वा नियुञ्ज्याद्देशिकः शिशून्।।७१।।
अथान्यां शक्तिदीक्षां वा कुर्याद् भावे स्थितो गुरुः। भक्त्या सम्प्रतिपन्नानां यतीनां निर्धनस्य च।।७२।।
सम्पूज्य स्थण्डिले विष्णुं पार्श्वस्थं स्थाप्य पुत्रकम्। देवताभिमुखः शिष्यस्तिर्यगास्यः स्वयं स्थितः।।७३।।

करके सबके अन्त में पुनः प्रकृति की शुद्धि करनी चाहिये। 'शुद्ध हुआ प्राकृत पुरुष ईश्वरीय धाम में प्रतिष्ठित है। उसने सम्पूर्ण भोगों का अनुभव कर लिया है और अधुना वह मुक्तिपद में स्थित है।' इस तरह ध्यान करना चाहिये और पूर्णाहुति देनी चाहिये। यह अधिकार सम्प्रदान करने वाली दीक्षा है। उपरोक्त मन्त्र के अङ्गों द्वारा आराधना करके, तत्त्वसमूह को समभाव (प्रकृत्यवस्था) में पहुँचाकर, क्रमशः इसी विधि से शोधन करके, अन्त में साधक अपने को सम्पूर्ण सिद्धियों से युक्त परमात्म रूप से स्थित अनुभव करते हुए पूर्णाहुति दे—यह साधक विषयक दीक्षा कही गयी है। यदि यज्ञोपयोगी द्रव्य का निष्पादन (संग्रह) न हो सके, अथवा अपने में असमर्थता हो, तो समस्त उपकरणों सहित श्रेष्ठ गुरु पूर्ववत् इष्टदेव का पूजन करके, तत्काल उनको अधिवासित करके, द्वादशी तिथि में शिष्य को दीक्षा देने को उद्यत हों। जो गुरुभक्त विनयशील एवं समस्त शारीरिक सद्गुणों से सम्पन्न हो, ऐसा शिष्य यदि अधिक धनवान न हो, तो वेदी पर इष्टदेव का पूजन मात्र करके दीक्षा ग्रहण करना चाहिये। आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक, सम्पूर्ण अध्वाका सृजनक्रम से शिष्य के शरीर में चिन्तन करके, गुरु पहले बारी-बारी से आठ आहुतियों द्वारा एक-एक की तृप्ति करने के पश्चात्, सृष्टिमान् हो, वसुदेव आदि विग्रहों का उनके निज-निज मन्त्रों द्वारा पूजन एवं हवन करना चाहिये और हवन पूजन के पश्चात् अग्नि आदि का विसर्जन कर देना चाहिये। तत्पश्चात् उपरोक्त हवन द्वारा विनाश क्रम से तत्त्वों का शोधन करना चाहिये।।६०-६८।। दीक्षाकर्म में पहले जिन सूत्रों में गाँठें बाँधी गयी थीं, उनकी वे गाँठें खोल दें। गुरु को उनको शिष्य के शरीर से लेकर, क्रमशः उन तत्त्वों का शोधन करना चाहिये। प्राकृतिक अग्नि एवं आधिदैविक विष्णु में अशुद्धि मिश्रित शुद्ध तत्त्व को लीन करके पूर्णाहुति द्वारा शिष्य को उस तत्त्व से संयुक्त करना चाहिये। इस तरह शिष्य प्रकृति भाव को प्राप्त होता है। तत्पश्चात् गुरु उसके प्राकृतिक गुणों को भावना द्वारा दग्ध करके उसको उनसे छुटकारा दिलावे। ऐसा करके वे शिशुस्वरूप उन शिष्यों को अधिकार में नियुक्त करें। तत्पश्चात् भाव में स्थित हुआ आचार्य भक्तिभाव से शरण में आये हुए यतियों तथा निर्धन शिष्य को 'शक्ति' नाम वाली दूसरी दीक्षा दे। वेदी पर भगवान् विष्णु की पूजा करके पुत्र (शिष्यविशेष) को अपने पास बिठा ले। फिर शिष्य देवता के सम्मुख

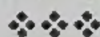
अध्वानं निखिलं ध्यात्वा पर्वभिः स्वैर्विकल्पितम्। शिष्यदेहे तथा देवमाधिदैविकयाजनम्।।७४।।
ध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य पूर्ववत्ताडनादिना। क्रमात्तत्त्वानि सर्वाणि शोधयेत्स्थण्डिले हरौ।।७५।।
ताडनेन वियोज्याथ गृहीत्वात्मनि तत्पुनः। देवे संयोज्य संशोध्य गृहीत्वा तत्स्वभावतः।।७६।।
आनीय शुद्धतत्त्वे सन्धयित्वा क्रमेण तु। शोधयेद्ध्यानयोगेन सर्वत्रोत्तानमुद्रया।।७७।।
शुद्धेषु सर्वतत्त्वेषु प्रधाने चेश्वरे स्थिते। दग्ध्वा निर्वापयेच्छिष्यान् पदे चैशे नियोजयेत्।।७८।।
निनयेत् सिद्धिमार्गेण साधकं देशिकोत्तमः। एवमेवाधिकारस्थो गृही कर्माण्यतन्द्रितः।।७९।।
आत्मानं शोधयंस्तिष्ठेद्यावद्रागक्षयो भवेत्। क्षीणरागमथात्मानं ज्ञात्वा संशुद्धकिल्विषः।।८०।।
आरोप्य पुत्रे शिष्ये वा ह्यधिकारं तु संयमी। दग्ध्वा मायामयं पाशं प्रव्रज्य स्वात्मनि स्थितः।।
शरीरपातमाकाङ्क्षन्नासीताव्यक्तलिङ्गवान्।।८१।।

।।इत्यादिमहापुराणे भगवान् वेदव्यासकृत श्रीविष्णुवामपादस्वरूपे श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गति सर्वदीक्षाविधिकथनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।।२७।।



हो तिर्यग् दिशा की तरफ मुँह करके स्वयं बैठे। गुरु को शिष्य के शरीर में अपने ही पर्वों से कल्पित सम्पूर्ण अध्वा का ध्यान करके आधिदैविक यजन के लिये प्रेरित करने वाले इष्टदेव का भी ध्यान योग के द्वारा चिन्तन करना चाहिये। फिर पूर्ववत् ताडन आदि के द्वारा क्रमशः सम्पूर्ण तत्त्वों का वेदीगत श्रीहरि में शोधन करना चाहिये। ताडन द्वारा तत्त्वों का वियोजन करके उनको आत्मा में गृहीत करना चाहिये और पुनः इष्टदेव के साथ उनका संयोजन एवं शोधन करके, स्वभावतः ग्रहण करने के अनन्तर ले आकर क्रमशः शुद्ध तत्त्व के साथ संयुक्त करना चाहिये। सभी जगह ध्यान योग एवं उत्तान मुद्रा द्वारा शोधन करना चाहिये।।६९-७७।। सम्पूर्ण तत्त्वों की शुद्धि हो जाने पर जिस समय प्रधान (प्रकृति) तथा परमेश्वर स्थित रह जायँ, उस समय उपरोक्त विधि से प्रकृति को दग्ध करके शुद्ध हुए शिष्यों को परमेश्वर पद में प्रतिष्ठित करना चाहिये। श्रेष्ठ गुरु साधक को इस तरह सिद्धिमार्ग से ले चले। अधिकारारूढ़ गृहस्थ भी इसी तरह आलस्य छोड़कर समस्त कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिये। जिस समय तक राग (आसक्ति) का सर्वथा नाश न हो जाय, उस समय तक आत्म शुद्धि का निष्पादन करते रहना चाहिये। जिस समय यह अनुभव हो जाय कि 'मेरे हृदय का राग सर्वथा क्षीण हो गया है', उस समय पाप से शुद्ध हुआ संयमशील पुरुष अपने पुत्र या शिष्य को अधिकार सौंपकर मायामय पाश को दग्ध करके सन्यास ले, आत्मनिष्ठ हो, देहपातकी प्रतीक्षा करते रहना चाहिये। अपनी सिद्धि सम्बन्धी किसी चिह्न को दूसरों पर व्यक्त न होने दे।।८१।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी सत्ताईसवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।२७।।



अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनम्

अग्निरुवाच

निर्वाणादिषु दीक्षासु चत्वाशिंत्तथाष्ट च। संस्कारान् कारयेद्धीमाञ्शृणु तान् यैःसुरो भवेत्।।१।।
गर्भाधानं तु योन्यां वै ततः पुंसवनं चरेत्। सीमन्तोन्नयनं चैव जातकर्म च नाम च।।२।।
अन्नाशनं ततश्चूडा ब्रह्मचर्य व्रतानि च। चत्वारि वैष्णवी पार्थी भौतिकी श्रौतिकी तथा।।३।।
गोदानं स्नातकत्वं च पाकयज्ञाश्च सप्त ते। अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रायणीति च।।४।।
चैत्री चाश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञांश्च ताञ्शृणु। आधानं चाग्निहोत्रं च दर्शो वै पौर्णमासकः।।५।।
चातुर्मास्यं पशुबन्धः सौत्रामणिरथापरः। सोमस्थाः सप्त शृणु अग्निष्टोमः क्रतूत्तमः।।६।।
अत्यग्निष्टोम उक्थ्यश्च षोडशी वाजपेयकः। अतिरात्रोऽप्तोर्यामश्च सहस्रेशा सवा इमे।।७।।
हिरण्याङ्घ्रिर्हिरण्याक्षा हिरण्यमित्र इत्यतः। हिरण्यपाणिर्हेमाक्षो हेमाङ्गो हेमसूत्रकः।।८।।
हिरण्यास्यो हिरण्याङ्गो हेमजिह्वो हिरण्यवान्। अश्वमेधो हि सर्वेशो गुणाश्चाष्टाथ ताञ्छृणु।।९।।
दया च सर्वभूतेषु क्षान्तिश्चैव तथार्जवम्। शौचं चैवमनायासो मङ्गलं चापरो गुणः।।१०।।
अकार्पण्यश्चास्पृहा च मूलेन जुहुयाच्छतम्। सौरशाक्तेयविष्णवीशदीक्षास्वेतेसमाः स्मृताः।।११।।
संस्कारैः संस्कृतश्चैतैर्भुक्तिमवाप्नुयात्। सर्वरोगादिनिर्मुक्तो देववद् वर्तते नरः।।१२।।
जप्याद्धोमात्पूजनाच्च ध्यानाद्देवस्य चेष्टभाक्।।१३।।

।। इति श्रीअग्निमहापुराणान्तर्गते निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।।३२।।

अध्याय–३२

निर्वाण-दीक्षा की सिद्धि हेतु संस्कार कथन

भगवान् अग्निदेव ने कहा कि–हे ब्रह्मन्! बुद्धिमान् पुरुष निर्वाणादि दीक्षाओं में अड़तालीस संस्कार कराये। उन संस्कारों का वर्णन सुनिये। जिससे मनुष्य देवतुल्य हो जाता है। सर्वप्रथम योनि में गर्भाधान, तत्पश्चात् पुंसवन संस्कार करना चाहिये। फिर सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, चार ब्रह्मचर्यव्रत–वैष्णवी, पार्थी, भौतिकी और श्रौतिकी, गोदान, समावर्तन, सात पाकयज्ञ–अष्टका, अन्वष्टका पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजी, सात हविर्यज्ञ–आधान, अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्ध तथा सौत्रामणी, सात सोमसंस्थाएँ–यज्ञश्रेष्ठ अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र एवं आप्तोर्याम; सहस्रेश यज्ञ–हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र, हिरिण्पाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्र, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग, हेमजिह्व, हिरण्यवान् और सभी यज्ञों का स्वामी अश्वमेघयज्ञ तथा आठ गुण–सर्वभूतदया, क्षमा, आर्जव, शौच, अनायास, मङ्गल, अकृपणता और अस्पृआ–ये संस्कार करना चाहिये। इष्टदेव के मूल मन्त्र से सौ आहुतियाँ देनी चाहिये। सौर, शाक्त, वैष्णव तथा शैव–सभी दीक्षाओं में ये समान माने गये हैं। इन संस्कारों से संस्कृत होकर मनुष्य भोग–मोक्ष को प्राप्त करता है। वह सम्पूर्ण रोगादि से मुक्त होकर देववत् हो जाता है। मनुष्य अपने इष्टदेवता के जप, हवन, पूजन तथा ध्यान से इच्छित वस्तु को प्राप्त करता है।।१–१३।।

।।इस प्रकार महापुराणों में श्रेष्ठ श्रीविष्णुवामपादस्वरूप कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यासकृत अग्निमहापुराणान्तर्गत आगत विषयों का विवेचन सम्बन्धी बत्तीसवाँ अध्याय डॉ. सुरकान्त झा द्वारा सुसम्पन्न हुआ।।३२।।

❖❖❖